B.A. (Hons) Part II

Philosophy- Paper-III (1)

Topic- वर्ण और आश्रम

Dr. Sachidanand Prasad.
R.R.S. College, Mokama.

हिन्दु धर्म मे वेद ही सबसे पुरातन माना जाता है। पुरुषसूक्त मे वर्ण भेद का प्रथम वर्णन देखने को मिलता है। इस वर्ण भेद का उद्भव और विकास तत्कालीन इतिहास से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि उसी काल में आर्य भारत मे बाहर से आये और जब वे यहाँ के निवासियों से मिले तो अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। इसी क्रम मे जीवन की विविधताओं के कारण नये-नये वर्गों का विकास हुआ। प्रारम्भ मे सभी व्यक्ति अपने मनोकुल जीवन व्यतीत करते थे क्योंकि उनमे वर्ग या वर्ण भेद नही था परन्तु बाद में उनमे से कुछ सर्वहारा वर्ग से भिन्न पुरोहित वर्ग और कुलीन वर्ग के माने जाने लगे। पहले सभी वैश्य माने जाते थे लेकिन बाद मे पुरोहित वर्ग ~~वर्ग~~ वैश्य वर्ग से भिन्न माना जाने लगा। राजा क्षत्रिय कहलाते थे। द्रविड़ जो यहाँ के आदि निवासी थे, उन्हे शूद्र कहा गया। इसप्रकार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी वर्ण-भेद उस काल की आवश्यकताओं के अनुकूल था जिसमें भिन्न-

भिन्न जातियों के व्यक्ति अपनी संस्कृति और आत्म-सम्मान सहित एक साथ शांति से रह सके। मनुष्य की संरचना भी समाज और विश्व की संरचना के समान है इसलिए वेदो में मनुष्य को शरीर, मस्तिष्क, बुद्धि और आत्मा का संगठित सम्पूर्ण कहा गया है। इसीप्रकार समाज को भी चार वर्णो ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजन किया गया। इसप्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्ण-भेद का आधार तात्विक और सामाजिक है। यह वर्ण-भेद प्रारम्भ से मनुष्य के कर्मो पर आश्रित था क्योकि जो व्यक्ति ब्रह्म विद्या का पाठ करते थे, उन्हे ब्रह्मण कहा जाता था। इसीप्रकार जो व्यक्ति देश की रक्षा का भार संभालते थे उन्हे 'क्षत्रिय' कहा जाता था। जो व्यक्ति व्यापार करते थे उन्हे 'वैश्य' कहा जाता था और जो व्यक्ति सेवा करते थे उन्हे 'शूद्र' कहा जाता था।

हिन्दु धर्म में सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमो मे बाँटा गया है। (1) ब्रह्मचर्य (2) गार्हस्थ (3) वानप्रस्थ (4) सन्यास। विद्यार्थी जीवन को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। एक या एक से अधिक वेदों का अध्ययन ही इस काल की विशेषता है। यह शारीरिक विकास पर जोर देते हुए अर्थ-उपार्जन का साधन तैयार करता है। यह व्यक्ति को मानसिक

(3)

विकास के लिए उपयुक्त बनाता है।
पारिवारिक जीवन को गार्हस्थ्य आश्रम कहा गया है जिसमें काम की तुष्टि होती है और यज्ञ इत्यादि धार्मिक कर्मकाण्ड के पालन की आज्ञा दी जाती है।
वानप्रस्थ आश्रम में प्रायश्चित, जप, ~~आ~~ उपवास इत्यादि में समय व्यतीत होता है जो व्यक्ति को अंतिम स्तर के लिए तैयार करता है।
सन्यास धारण कर लेने पर जब मनुष्य गृह त्याग देता है इस अवस्था में उसकी कोई सम्पत्ति नहीं रहती और इस अवस्था में उसकी एक ही कामना रहती है - ईश्वर की प्राप्ति।
मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखा जाये तो यह सही लगता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी मानव जीवन का पहला भाग सीखने तथा अनुभव से ज्ञान उपार्जन करने के लिए उपयुक्त है। दूसरे भाग में जब मनुष्य युवा हो जाता है तब उसे विवाहित जीवन व्यतीत करना पड़ता है और अपने पारिवारिक जीवन में व्यस्त हो जाता है। फिर एक ऐसी स्थिति आती है जब मनुष्य अपने जीवन की सफलताओं एवं विफलताओं पर विचार करता है और अंत में उसके अन्दर विरक्ति की भावना भी आने लगती है।